RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

लक्ष्मीनारायण लाल के विवेच्य उपन्यास 'रुपाजीवा' में चित्रित पारिवारिक जीवन

रेखा रानी

शोधार्थी जे.जे.टी.यू., झुंझनू (राजस्थान)

संयुक्त परिवारों का स्वरूप :–

भारतीय समाज में परिवार एक महत्वपूर्ण संस्था है। परिवार पर ही सम्पूर्ण समाज की नींव रखी है। स्वतन्त्रता आंदोलन का काल संक्रमण का काल था। जहां सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक व्यवस्था में परिवर्तन हो रहा था, वहीं समाज की कोई भी इकाई इससे अछूती न थी फिर परिवार जैसी छोटी इकाई इसके प्रभाव से कैसे बच सकती थी।

पराधीनता के समय बड़ी हानि आर्थिक रूप से हुई। चुंकि अर्थ ही आधुनिक काल में सब कार्यों की धुरी है तो इसका प्रभाव सामाजिक जीवन पर पड़ना भी स्वाभाविक था। धन सबसे ऊपर तथा नैतिकता सबसे नीचे आ गई। जहाँ पहले परिवार में बड़े से छोटों तक में धैर्य, संतोष, सद्भाव, विश्वास, सौहार्द एवं सामाजिक जिम्मेदारियाँ पाई जाती थी, वे सब धीरे–धीरे विघटित होती दिखाई देने लगे। औद्योगिकरण से नगरीकरण हुआ और नगरीकरण से समाज के परम्परागत ढाँचे में परिवर्तन हुआ।

परिणामस्वरूप नैतिक मूल्यों में विघटन की समस्या सामने आई जिसने आपसी पारिवारिक सम्बन्धों में दरार पैदा कर दी और यह दरार थी मानसिक विचारों की। **''स्वतन्त्रता के उपरांत लोगों में आत्मविश्वास व जागरूकता आई। इसके साथ–साथ माँ–बाप, भाई–बहन, पति–पत्नी, सभी रिश्तों में भी कड़वाहट आ गई। स्वार्थ व स्वहित एकमात्र मानदण्ड रह गए है जिसमें व्यक्ति सम्बन्ध तलाशने लगा है।''**[1]

यद्यपि समय के साथ साथ अलगाववाद व व्यक्तिवाद रूपी दो समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं फिर भी हमें संयुक्त परिवारों के अस्तित्व को बनाए रखने की कोशिश करनी चाहिए और निराश नहीं होना चाहिए। विघटन के कुछ चिह्न जरूर लक्षित हो रहे हैं लेकिन पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हुए हैं। मूल रूप में हमारे पुराने संस्कार अब भी मनुष्य के अंदर जीवित हैं।

1. संयुक्त परिवार में विविध सम्बन्ध :–

पिता का संतान के साथ सम्बन्ध :–

यद्यपि मातृ वात्सल्य के आगे पितृ स्नेह फीका लगता है तथापि हिन्दी साहित्य और सामाजिक जीवन में भी पिता के स्नेहमय आदर्श रूप का चित्रण यत्र–तत्र मिलता है। पिता का स्थान घर में माता के स्थान से कम महत्वपूर्ण नहीं होता। जनक होने के साथ–साथ व पोषक भी होता है और शिशु के लालन–पालन से लेकर शिक्षा–दीक्षा के द्वारा उसे परिपक्व नागरिक बनाने की आर्थिक, नैतिक जिम्मेदारी उसी की होती है क्योंकि वह जीवन के यथार्थ को अच्छी प्रकार समझ सकता है। पुत्र स्नेह के आगे तो पिता अपने कर्म तक को भूल जाता है।

'रूपाजीवा' में लक्ष्मीनारायण लाल चेतराम द्वारा संतान के दायित्व को पूरा करने का भरसक प्रयास करते हुए दिखाया गया है। पुत्र सूरज के लिए तो वह अपनी एक–एक सांस भी न्योछावर कर सकता है। सूरज जब पलंग से गिर पड़ता है तो वह बेतहाशा दौड़कर घर के भीतर आता है तथा बच्चे को गोद में उठाकर जबरदस्ती रूपा बहु को देता है और कहता है कि – **''यह पूत चिराग है हमारा! इसकी छठी वगैरहा से तो मेरा जी ही नहीं भरा है। अभी तो इसके नाम पर बहुत कुछ करने को जी है। कुण्डली बनवाऊँगा, एक दूधवाली गऊ दान करूँगा, गुरूधाम चलेंगे इसे लेकर–गुरूबाबा से इसका नाम रखवाऊँगा। फिर पूरी बस्ती के साहूकारों को एक भोज दूँगा।''**[2]

उस समय पुत्र संतान को विशेष महत्व दिया जाता था, क्योंकि उसे ही घर का चिराग व बुढ़ापे का सहारा माना जाता था। सूरज से पहले दो पुत्री सन्तान भी थी। लेकिन उपन्यासकार ने समय की नब्ज पकड़ते हुए यथार्थवादी चित्रण करते हुए पुत्र सन्तान को ही मूलधन कहा है। चौधरी छेदामल कुत्तों को रोटी खिला रहा था तो चेतराम उसे देखकर कल्पना में खो जाता है। नाना गोरेमल चेतराम प्रताड़ित करता रहता है।

सूरज को अपने पिता की इस दयनीय दशा पर क्रोध आता है। वह इनका सबका जिम्मेदार गोरेमल को मानता है इसलिए वह गोरेमल से साफ–साफ कह देता है कि मेरा पिता जी तुम्हारा गुलाम नहीं है। पैसे का जोर दिखाकर तुमने उनका जीना मुश्किल कर दिया है। गोरेमल कहता है – **''बनिया और दिल की बीमारी हद हो गई।''**[3] तब सूरज उससे सवाल जवाब करते हुए कहता है कि ''यह दौरे की बीमारी दी किसने? तुमने गोरेमल।'' वह अपने पिता को गोरेमल नाम की मुसीबत से छुटकारा दिलवाना चाहता था।

स्पष्टतः लाल ने बदलते परिवेश में पिता–पुत्र सम्बन्धों में जहाँ प्यार व सम्मान का अभाव कुछ पात्रों में दर्शाया है वहाँ कुछ पात्रों में उसी वात्सल्य की प्रेम–सरिता के शीतल जल में तैरते हुए दिखाई देते हैं।

माता के सन्तान के साथ सम्बन्ध :–

माता के रूप में स्त्री का सदा से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सन्तान के पालन–पोषण का भार माता पर ही रहता है। वह अपनी सन्तान से निस्वार्थ प्रेम करती है। उन्हें किसी भी

RRIJM 2015, All Rights Reserved

कष्ट में नहीं देख पाती है। चाहे बच्चे बड़े हो जाएं फिर भी वह उनको छोटे व अपने बिना असहाय महसूस करती है। भारतीय समाज में माँ एक ऐसी स्नेह तथा वात्सल्य की सरिता है जिसकी तुलना हम और किसी भी रिश्ते से करने की सोच भी नहीं सकते। माँ के आँचल में ऐसी छाया होती है जिसके नीचे आने पर संसार की सारी तपन खुद व खुद दूर हो जाती है। बाहरी रूप से ही नहीं अपितु भावनात्मक रूप से भी माँ बच्चे से जुड़ी रहती है। माँ अपने अस्तित्व को भूलाकर बच्चों में विलीन हो जाती है और बच्चे थोड़ा–सा कष्ट होते ही 'माँ' शब्द पुकार उठते हैं। माँ बच्चे की प्रथम गुरू मानी गई है। वह बच्चों को नैतिक शिक्षा का पाठ पढ़ाती है तथा स्नेहमय सूत्र से अपने व बच्चों के बीच एक अटूट सम्बन्ध रखती है। दूसरों के साथ रिश्तों को कैसे निभाया जाता है यह सब माँ ही बच्चों को सिखाती है। राजू पण्डित की संतान होने के कारण रूपा सूरज से प्रेम नहीरं करती। वह चेतराम से कहती है – **''ले जा यह बच्चा मुझे नहीं चाहिए। इसे अपने संग रख।''**[4] और बच्चे को गोद से अलग कर जमीन पर लुढ़का देती है। रूपाबहु का यह कार्य माँ के स्वभाव से बिल्कुल विपरीत था। इससे हमें पता चलता है कि रूपाबहु सूरज को प्रेम नहीं करती थी। इसी कारण माँ व बेटे में भावनात्मक रिश्ता नहीं बन पाता है। प्रारंभ में माँ पुत्र से नफरत करती है बाद में पूरे उपन्यास में सूरज माँ को स्नेह व आदर नहीं देता है। रूपाबहु सूरज को देखते ही आत्मग्लानि व पश्चाताप से भर जाती है क्योंकि वह नियोग पद्धति से उत्पन्न राजू पण्डित की सन्तान है। वह राजू पण्डित से भी घृणा करती है। उसका दिया प्रसाद तक बच्चों को खाने नहीं देती। परन्तु धीरे–धीरे दोनों वात्सल्यभाव में बहकर एक–दूसरे को स्वीकार कर लेते हैं। अंत में रूपाबहु के अंदर सोयी हुई ममता जाग जाती है और वह जी–जान से सूरज को चाहती है। यहाँ तक कि जब उसका पिता गोरेमल उसे उठाने के लिए कहता है तो वह कहती है कि **''वापस कर दो यह वसीयत! दे दो इसे! मेरा जो कुछ बचा है वह मैं तुम्हें नहीं दे सकती। चले जाओ यहां से।''**[5] लेकिन रूपाबहु स्वभाव से बुरी नहीं थी। क्योंकि जैसा व्यवहार उसने सूरज के साथ किया वैसा अपनी बेटियों के साथ नहीं किया अपनी बेटियों की शादी को लेकर वह हमेशा सोचती थी कि **''उनकी शादी ऐसे घर और वर से करूँगी जिसके पास चाहे कुछ भी न हो लेकिन ढेर सारा प्यार हो। ईसरी व मधु जब सुबह घूमने जाते हो उन दोनों को देखकर कल्पना करती थी कि मैं अपनी सीता बेटी की शादी ऐसे पुरुष से करूँगी जिसके पास और कुछ हो न हो केवल प्यार हो, शक्ति और श्रद्धा हो, बस वह सच्चा पुरुष हो, जैसे प्रकृत्ति का वर होता है।''**[6]

माँ व बच्चों के बीच में एक ऐसा भावनात्मक रिश्ता होता है, जो उन्हें एक–दूसरे से बांधे रखता है। ऐसा ही रिश्ता शारदा व संतोष के बीच था। शारदा राजू पण्डित की पत्नी तथा संतोष की माँ थी जो हमेशा बीमार रहती थी। वह अपनी बेटी का पालन पोषण भी नहीं कर सकी क्योंकि उसके जन्म के तुरंत बाद वह बीमार पड़ गई थी। सही दवा दारू न होने के कारण वह ठीक नहीं हो रही थी। जब मधु बुआ उसे खाना–खिलाकर बालों में तेल डालकर जाती है तो वह संतोष से कहती है कि – **''संतोष माँ के पास रहना क्योंकि वह बीमार है। संतोष माँ के सिरहाने खड़ी रही धर्म की भाँति अटल, सुनिश्चित।''**[7]

पुत्र सुलभ मानसिकतावश या अनेक बार परिस्थितिवश माता की उपेक्षा कर जाता है। परन्तु माता के हृदय पर जो बीतती है वह एक माता ही अनुभव करती है। जैसे राजू पण्डित कई बार अपनी माता को उपेक्षित करते हुए उसे डाँट देता है। लेकिन फिर भी वह उसकी बिखरती गृहस्थी को संभालती है। स्नेह, वात्सल्य, ममता का यह आदान–प्रदान दोनों और से समान रहता है। जहाँ माता–पुत्र के लिए व्याकुल होती है और पुत्र माता के लिए भटकता देखा जा सकता है। जिस प्रकार अंत में सूरज अपनी माँ के लिए व्याकुल होता है और उसकी माँ सूरज के लिए तड़फती है। पीड़ा में खोई हुई रूपा माँ का पीला चेहरा देखकर सूरज काँप गया, **''उठो माँ, ऐसी भी क्या बात? मरने की बात तुम मत करो माँ।''**[8] इस प्रकार माँ व बच्चों के बीच स्नेह का यह अटूट रिश्ता टूटकर भी नहीं टूटता है।

बहन–भाई का सम्बन्ध :–

पारिवारिक सम्बन्धों में भाई–बहन के सम्बन्धों का अपना विशेष महत्त्व है। भाई बहन के सम्बन्ध के साथ उदात्तता, पवित्रता तथा पारिवारिक हित की भावनाएँ जुड़ी हैं। परन्तु आज परिवार के अन्य संबंधों की भाँति बहन–भाईयों के सम्बन्ध में भी परिवर्तन दिखाई देते हैं। बहनें भाईयों की अपेक्षा अधिक प्यार करती हैं। अधिक लगाव रखती है। चाहे कहीं भी रहे उन्हें भाईयों की चिन्ता लगी रहती हैं। भाई के ऊपर परिवार की जिम्मेदारी का बोझ पड़ने के कारण वह मानसिक व शारीरिक रूप से बँट जाता हैं जिस कारण इस रिश्ते में दूरियाँ पनपनी शुरू हो जाती हैं। वे न ही उनसे मिलने के लिए उतावले होते हैं और न ही आने पर इतने प्रसन्न दिखाई देते हैं जितने पहले होते थे।

लाल के 'रूपाजीवा' उपन्यास में इस प्रकार का परिवर्तन दिखाई नहीं देता। संयुक्त परिवार में जिस प्रकार भाई बहन नोक–झोंक के साथ रहते हैं, वही चित्रण उनके उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है। लेकिन भाई बहन की नोक–झोंक से सम्बन्ध बिगड़ते नहीं है बल्कि और भी मधुर बनते हैं। सूरज का सीता व गौरी के साथ इसी प्रकार का रिश्ता है। सूरज छोटा होते हुए भी गोरी व सीता को कभी भी नहीं जीतने देता है। माँ–बाप के बाद बहन–भाई के घर में तभी आती हैं जब उसे मान सम्मान दें। 'रूपजीवा' उपन्यास में चेतराम अपनी बहन मधु को ससुराल से अपने बेटे सूरज की देख रेख के लिए लाता हैं। लेकिन जब रूपा बहु सूरज को मंदिर ले जाने के कारण मधु को बुरा भला कहती हैं तो मंगूदादी उससे झगड़ पड़ती है और दादी चेतराम को भी बुरा–भला कहती हैं, इससे चेतराम शर्मिंदा हो जाता है तथा **''अपनी लाड़ली बहन के मन पर प्यार–सा कुछ बरसाना चाह रहा है।''**[9] चेतराम को अपनी मधु बहन बहुत प्यारी थी। बेटी की तरह दुलारता था। उसे कोई भी कष्ट हो यह वह बर्दास्त नहीं कर सकता था।

बहन–भाई का रिश्ता गहराई से अन्तरात्मा से जुड़ा होता हैं इसलिए वे एक–दूसरे के मन में भाव, पीड़ा को भली–भाँति समझ लेते हैं। चेतराम बहन मधु से हार्दिक प्रेम

RRIJM 2015, All Rights Reserved

करता है। ससुर गोरेमल से थर–थर काँपने वाला चेतराम भी उसके द्वारा बहन को ताना मारने पर तड़फ उठता है। **"लल्ला, जाकर गोरेमल से कह दो मुझे ताना न मारे।"**[10]

वही मधु बुआ चेतराम के स्वर्गवास होने का दुखद समाचार सुनकर चीत्कार कर उठती है। सूरज भी एक आदर्श भाई की परम्परा का निर्वाह करता है तथा अपनी बहन गौरी का विवाह अच्छे परिवार में करता हैं। अपनी बहनों से भरपूर प्यार भी करता है। लाल ने अपने उपन्यास में भाई–बहन का आदर्श सम्बन्ध दर्शाया हैं। पूरे उपन्यास में कही भी इस रिश्ते में थोड़ी–सी कड़वाहट नहीं आने दी। उन्होंने शुरू से अन्त तक इस बात का पूरा ख्याल रखा हैं।

ननद भाभी का सम्बन्ध :–

ननद भाभी का समाज में परिवार में एक ऐसा रिश्ता है जिसमें सदा नोंक–झोंक, शिकवे–शिकायतें, ताने उलाहने चलते रहते हैं। ज्यादातर देखने में आता है कि ननद भाभी के रिश्ते में तनाव ही रहता है। **"इसके पीछे भी बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण होता है। ननद भाभी प्रायः हम उम्र होती हैं भाई के विवाह से पूर्व बहन भाई पर अपना पूर्ण एकाधिकार मानती है और भाई भी बहन को पूरा समय व प्यार देता है। जैसे ही विवाह के बाद भाभी घर में आती है बहन को अपना प्यार बंटता दिखाई देता है जो वह सहन नहीं करती है।"**[11] उसे यह लगने लगता है कि भाई उसकी परवाह नहीं करता, उसका ध्यान नहीं रखता, उतना प्यार नहीं करता जितना शादी से पहले करता था। लेकिन भाई भी एक नई जिम्मेवारी में बंधने को कारण थोड़ा बहुत समय व प्यार कम कर देता है जिसके कारण बहन भाभी को मानती है। यदि वह बहन को वहीं प्यार व समय देता है तो भाभी को सहन नहीं होता। भाई का प्रेम व स्नेह, समय बहन व पत्नी में बँट जाता है जिससे ननद व भाभी के रिश्ते में तकरार की दीवार खड़ी हो जाती है। भाभी पति व घर पर अपना एकाधिकार चाहती है और ननद को पराया धन मानती है।

यदि ननद बड़ी है तो भाभी पर अपना शासन चलाती है और यदि छोटी है तो वह भाभी को माँ समान सम्मान भी देती है।

लक्ष्मीनारायण लाल ने 'रूपाजीवा' में ननद भाभी के सम्बन्ध में एक उच्च आदर्श स्थापित करने की कोशिश की है। जहाँ ननद अपनी भाभी को माँ का दर्जा देती है और भाभी ननद को बुरा भला कहती है। जब मधु बुआ ठाकुरद्वारे में रूपाबहु के बेटे सूरज को राजू पण्डित के पास ले जाती है, जिस राजू पण्डित से सूरज का जन्म नियोग पद्धति से हुआ था। वह राजू पण्डित से घृणा करती है और नहीं चाहती कि उसके बेटे पर उसकी परछाई भी पड़े। सूरज के माथे पर लगे तिलक को देखकर रूपाबहू मधु पर उबल पड़ती है – **"क्यों ले गई इसे ठाकुरद्वारे किसने तुमसे कहा था? तिलक लगाकर लाई है। इसे चरणामृत भी पिलाया होगा। बोलती क्यों नहीं? जबान कट गई क्या?"**[12]

लेकिन यह पूर्ण सत्य नहीं है कि इनके (ननद भाभी) रिश्ते में दया, प्रेम नहीं होता है। आखिर वे दोनों भी इंसान है और औरत भी। जो एक दूसरे का दर्द भी समझती है। जब मधु के पति ने उसे तीन सौ रुपये के लिए खत लिखा तो मधु बुआ बेचैन हो गई कि कहाँ से लाऊँ इतने पैसे? परन्तु जब सूरज ने रूपाबहु से कहा कि मधु बुआ को फूँफा जी के ईलाज के लिए तीन सौ रूपये चाहिए तो उसके अन्दर बैठी एक औरत का दयाभाव जाग गया और उसने सूरज को कहा जाओ मधु बुआ को भेजो। मधु को तीन सौ रूपये देते हुए कहा – **"यह रहे तीन सौ रूपये, उन्हें लिख दो कि रूपया पाते और चिट्ठी देखते ही सीधे यही चले आये।"**[13]

जब ईसरी और मधु बुआ घर छोड़कर चले जाते हैं तो वह तड़फ उठती है और स्वयं को धिक्कारना प्रारंभ कर देती हैं कि "लगता हैं मेरी वजह से चले गए! मैंने तो मधु को वह कहा था। रूपा बहु का स्वर कुछ भारी हो गया, **"पता नहीं कहाँ गये? कैसे गये होगे वे?"**[14]

यह सब सोचकर रूपाबहू बैचेन हो जाती हैं। उसके मन में मधु के प्रति स्नेह व सम्मान झलक रहा है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि लाल ने उपन्यास में नन्द–भाभी का रिश्ता साधिकार ग्रस्त व संस्कारी दिखाया हैं। इस सम्बन्ध में समय का भी प्रभाव हैं। उस समय ननद–भाभी के रिश्तें में इतनी कड़वाहट नहीं होती थी जितनी आजकल होती हैं। तब केवल भाभी को ही घर की मालकिन समझा जाता था, क्योंकि पिता का उत्तराधिकारी केवल बेटा होता था। अब लड़का हो या लड़की पिता की सम्पति के समान अधिकार होते हैं। यह बात भी ननद–भाभी के रिश्ते में नोंक–झोंक का कारण बनती हैं।

सास–बहु का सम्बन्ध :–

भारतीय समाज में दो प्रकार की परिवार प्रणाली पाई जाती हैं – एकल परिवार व संयुक्त परिवार। एकल परिवार में केवल पति–पत्नी व बच्चे होते है। लेकिन संयुक्त परिवार में सास–ससुर, नन्द, देवर, जेठानी, पति–पत्नी व बच्चे होते हैं। इन सब पर सास का शासन चलता है। वहीं पूरे घर की मालकिन होती है।

"संयुक्त परिवार में दाम्पत्य सम्बन्ध उस तरह केन्द्रीय सम्बन्ध नहीं होते जिस तरह एकल परिवार में होते हैं। दाम्पत्य सम्बन्ध यहाँ अन्य पारिवारिक संबंधों की छाया में या कहना चाहिए उनके दबाव के बीचों–बीच पनपते हैं। संयुक्त परिवार में सास–बहु का संबंध एक तरह से पुराने व नये विचारों के बीच अन्तर्विरोध को प्रतिबिम्बित करने वाला महत्वपूर्ण संबंध है। आज जबकि संयुक्त परिवार व्यवस्था संकटग्रस्त है तो वह अन्तर्विरोध और भी उग्र रूप में दैनिक जीवन में व्यक्त होता है।"[15]

उपर्युक्त विवेचन से हम कह सकते हैं कि यह विरोध दो व्यक्तियों के बीच में नहीं है वास्तव में नये व पुराने विचारों के बीच परिलक्षित होता है। नई पीढ़ी नई सोच के साथ जीवन जीना चाहती है और पुरानी पीढ़ी इन विचारों को सहन न करती हुई, उन पर असंस्कारी होने का आरोप लगाती है। लेकिन लाल ने 'रूपाजीव' उपन्यास में सास बहु के सम्बन्ध

RRIJM 2015, All Rights Reserved

को किसी विचारविरोधी परिधि में नहीं बांधा है बल्कि सास यहाँ निराधिकार है तथा बहु उस पर हावी हो रही है।

रूपा बहू और मूंगदादी में नोंक–झोंक, उपन्यास के आरंभ में ही दिखाई दे रही है। रूपाबहू नियोग पद्धति से उत्पन्न अपने बेटे सूरज को नहीं सँभालती है जो पलंग से गिरने के कारण जोर–जोर से रो रहा है। पौत्र स्नेहवश दादी यह सहन नहीं करती है और वह अधिकारपूर्ण स्थिति के प्रति सचेत हो बहु को बच्चे की देखभाल का आदेश देती है तो वह प्रत्युत्तर में कहती है – **''पेट फाड़ के तु ही रख ले न! बड़ी चोंचले दिखाने आई! बुला ले न अपने कमरे में, डाल दे जादू।''**[16]

रूपाबहू को किसी का भय नहीं है – पति का न सास का। सास की जब एक न चले तब वह वहीं शिकायत अपने बेटे से करती है। उसे बहु का एक भी गुण अच्छा नहीं लगता है। मंगूदादी चेतराम को रहस्य भरे स्वर में कहता है – **''सुना! .. कमरें में मुँह फुलाये बैठी है, न बाहर, न भीतर, न धोना, न नहाना। मैं कहे दे रही हूँ जे ऐब बच्चे पर जायगो, हाँ।''**[17]

जब मधु सूरज को ठाकुर द्वारे ले जाती है तो रूपा बहू उसे बुरा भला कहती है। यह सब एक माँ के असहनीय हो जाता है तो मंगूदादी रूपाबहू पर उबल पड़ती है और दोनों में झगड़ा हो जाता हे। मंगूदादी पूरी शक्ति से चीखकर लड़ने लगती है – ''कौन होती है तू मेरी बेटी को जे तर डाँटने वाली? ले जो मार अपन बेटन कूँ, बाप रे बाप, गजब हो गई।''

प्रत्युत्तर में रूपा बहू चिल्लाई – **''यह क्यों ले गई मेरे बेटे को ठाकुरद्वारे मंगूदादी चिल्लाई – तो आजुन से नाय छुएँगी वो, ले जा छप्पर पै रखू। बेटा....बेटा.....बेटा! तुझ सरीखी तो कोऊ माऊ न ही।''**[18]

रूपाबहू मंगूदादी की एक–एक बात का जवाब अपमान में भिगोकर देती है। जिससे मंगूदादी की मारे गुस्से से साँस फूलने लगती है। इस तरह सास–बहू के रिश्ते की कड़वाहट के कारण सारे परिवार को इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है। बेचारा चेतराम मंगूदादी व रूपाबहू नाम के दो पाटों में पिसता है। आखिर बात ऊपर रूपाबहू की ही रहती है क्योंकि वह गोरेमल सेठ की बेटी जो है। लेकिन मधु की स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत थी। परम्परागत रूप से उसकी ससुराल में उसकी सास की चलती थी। मधु की शादी को हुए कई वर्ष बीत गए थे लेकिन अभी तक वह माँ नहीं बन पाई थी। इसी कारण उसकी ससुराल वाले उसे घर में नहीं घुसने देते थे। ईसरी ने दूसरी शादी करने से मना कर दिया तो इसका दोष भी उसकी सास ने मधु के सिर पर मढ़ दिया। माँ–बाप ने इसका आशय यह लगाया कि **''हो न हो बहू ने मेरे बेटे को खामखाह अपनी मुट्ठी में बांध रखा है। सास तो इस विश्वास पर आ जमी थीं कि बहू ने पूत पर कुछ जादू टोटका कर रखा है।''**[19]

अतः रिश्तों में नोंक झोंक तो हरेक घर में चलती रहती है लेकिन सास बहु की नोंक–झोंक तो दुश्मनी में परिवर्तित हो गई है। इसी कारण बदलते परिवेश में वैचारिक मतभेदों के चलते बहू–सास के पास रहना ही नहीं चाहती है। परिणाम स्वरूप एकल परिवारों की संख्या निरंतर बढ़ रही है और संयुक्त परिवारों की संख्या घट रही है।

इसलिए समयानुसार अपनी सोच में परिवर्तन करना समय की मांग हो गई है जिससे परिवार जैसी इकाई (जिसमें ही केवल और केवल भावनात्मक रिश्ता रहता है) टूटने का शिकार न बने।

बुआ का भतीजे–भतीजी के साथ सम्बन्ध :–

बुआ का अपने भतीजे भतीजी के साथ अपार स्नेह व ममता से सराबोर, अनोखा रिश्ता है। यह रिश्ता बहन–भाई के बीच अत्यधिक प्रेम के कारण ही गाढ़ा होता है। बुआ की छत्र–छाया में भतीजे–भतीजी माँ का सा स्नेह पाते हैं। इसलिए बुआ ममता व त्याग की सात्विक मूर्ति मानी गई हैं।

उसी समय नवजात शिशु सूरज को मधु बुआ के स्नेह की धारा मिलती है जिसमें वह प्रवाहित होकर अपनी माँ तक ही भूल जाता है। जब रूपा बहु के पास सूरज रोता है, मधु के पास आकर चुप होता है। उसी के अंग को लगकर सो जाता है। मधु ने ही बड़े प्यार से उसका नाम सूरज रखा था। सूरज के साथ रहकर मधु बुआ अपने को सम्पूर्ण समझने लगती है। जैसे वह माँ बन गई हो और पहले घर के आंगन में खड़ी होकर बरस रही हो – **''देखो लोगों मैं पुत्रवती हूँ! कौन कहता है मेरे अङ्क में दूज का चाँद नहीं है, यह देखो।''**[20]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि **''बुआ के साथ भतीजे–भतीजियों के संबंध को परिभाषित करना कठिन बन जाता है उस संबंध को क्या नाम दिया जाए, कहना कठिन है।''**[21] लाल ने उपन्यास में बुआ का स्थान माँ से भी बढ़कर माना है तो भतीजे में बुआ भी पुत्र से बढ़कर आत्मसंतोष की अनुभूति प्राप्त करती है।

विवाहेत्तर सम्बन्ध या अवैद्य सम्बन्ध :–

विवाह संस्था भौतिकवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप परिवर्तित हो रही है। इस कारण परम्परागत मान्यताएँ परिवर्तित हो रही है। इस कारण परम्परागत मान्यताएँ भी शिथिल पड़ने लगी हैं। विवाह संस्था के पारम्परिक रूप को प्रभावित करने में नारी स्वातन्त्रय, आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा, वर्तमान आर्थिक व्यवस्था तथा औद्योगिक क्रांति एवं जीवन के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण का बहुत बड़ा हाथ है। इसके साथ–साथ विवाह संस्था के पारस्परिक स्वरूप को समसामयिक नारी मुक्ति आंदोलनों, विवाह विच्छेद, नारी की उच्च शिक्षा, आत्मनिर्भरता, परिवेश का नितांत नयापन, रूढ़ियों का टूटना, नए मूल्यों की स्थापना और पाश्चात्य संस्कृति के तेजी से बढ़ते प्रभाव ने परिवर्तित कर दिया है।

विवाह एक स्त्री–पुरुष के संबंधों की मान्यता रूपी बंधन है लेकिन पति के रहते पर–पुरुष की ओर आकर्षण या पत्नी के रहते पर नारी के खिंचाव को विवाहेत्तर सम्बन्ध या अवैद्य संबंध कहा जाता है। इसे अनैतिक प्रेम भी कह दिया जाता है

लेकिन प्रेम एक ऐसी भावना है जिसे न किसी परिभाषा में बांधा जा सकता है, जिसका कोई चित्र नहीं खींचा जा सकता। वैवाहिक जीवन में किसी तीसरे की ओर आकर्षित होने के कारण वह नहीं है जो विवाह से पहले प्रेम में वशीभूत होकर संबंध स्थापित करता है। **''दाम्पत्य संबंधों में वैचारिक भिन्नता, आपसी संवेदना व सहानुभूति के अभाव व तीसरे व्यक्ति के आगमन से दरार पैदा हो जाती है।''**[22] इन्हीं कारणों से विवाह विच्छेद तक हो जाते है जबकि विवाहेत्तर संबंध स्थापित हो जाने से परिवार में कलह का वातावरण बनता है और अंत होता है परिवार के विघटन से।

''दाम्पत्येत्तर संबंध पनपने का जहाँ एक कारण दाम्पत्य संबंधों का विघटन है वहीं पति अथवा पत्नी स्वयं को अपेक्षित अथवा प्रताड़ित अनुभव किये जाने की अनुभूति भी उन्हें किसी अन्य की ओर आकृष्ट करने का कारण बनती है।''[23]

लक्ष्मी नारायण लाल द्वारा कृत ''रूपाजीवा'' उपन्यास की पृष्टभूमि आधुनिक परिवेश भी नहीं है। इसे स्त्री पात्र आधुनिकता के गुणों से प्रभावित नहीं है और न ही वह विवाहिक संबंधों को तोड़ने के पक्ष में है। बल्कि वह सामाजिक मर्यादा व धर्म में आबद्ध होने के कारण विरोध भी नहीं करती है। पति रूप में पुरुष का वरण कर स्त्री अपने अधूरेपन को पूर्ण करना चाहती है। 'रूपाजीवा' की रूपाबाहू जब पहली बार चेतराम को देखती है तो वह पूर्ण होकर भी अपने आप को अपूर्ण समझती है।

घर में रूपा लक्ष्मी की भाँति पूजी गई – यह सब हुआ। पर उस सबके बीच कहीं यह भी हुआ, जिस दिन, प्रथम बार रूपाबहू की दृष्टि चेतराम से एक हुई उसे संतोष न हुआ। न जाने कोई भाव भरा कोना अपने आप धँस गया। लेकिन बीच में शक्तिमय धर्म जो था। पति की ओर का, पिता की ओर का ओर सबसे अधिक शरीर का धर्म, इन सबने रूपाबहू को बाँधा, उसके भावों में न जाने क्या–क्या भर दिया। उसकी दृष्टि का असंतोष, मन का कोई अभाव – यह सब भर गया – भरा रहा और वह धर्म तथा चेतराम के अतिरिक्त अनुराग से विस्मृति में खो गया है।

उपन्यास में स्पष्ट रूप से इन दोनों के संबंधों का कही वर्णन नहीं है बल्कि रूपा के व्यवहार से हमें पता चलता है कि रूपाबहू का बेटा सूरज नियोग पद्धति से उत्पन्न तथा इन्हीं क्षणों की देन है। जिसे रूपाबहू अपना नहीं पाती है। वह सूरज में राजू पण्डित को देखने लगती है तथा उससे नफरत करती है। इन संबंधों में एक मत द्रष्टव्य है **''ऐसे संबंधों के आधार में कहीं आर्थिक दशा होती है तो कहीं बेबसी, लाचारी या फिर नशा।''**[24]

इसके पश्चात दो स्थिति उत्पन्न होती है – एक तो यह कि वह औरत या पुरुष जो एक बार अवैद्य संबंध स्थापित कर लेता है, बार–बार उस तीसरे व्यक्ति की ओर आकृष्ट होता है। दूसरी स्थिति यह है कि उसमें अपराध बोध जागृत होने पर वह उस तीसरे व्यक्ति से घृणा करने लगता है। अवैद्य संबंध स्थापित होने के बाद 'रूपाजीवा' उपन्यास में दूसरी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। 'रूपाजीवा' उपन्यास में दूसरी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। रूपा बहू राजू पण्डित से नफरत करने लगती है, इस हद तक की वह उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहती है। इसके विपरीत शादीशुदा होते हुए भी धार्मिक पाखण्ड करते हुए, राधा–कृष्ण की लीला का बखान करके अपने व रूपा बहू के संबंध को पवित्र मानता है। रूपाबहू से उसका अत्यधिक लगाव हो जाता है। उसका रूपा की ओर आकृष्ट होना उसकी पत्नी शारदा की बीमारी तथा उसका स्वभाव था।

राजू पण्डित के संबंध स्थापित करने का कारण अकेले अपने को नहीं मानती है। राजू पण्डित से ज्यादा चेतराम को इसका जिम्मेवार मानती है वह उसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाया। ईसरी के सम्पर्क में आने के बाद धीरे–धीरे रूपाबहू अपने इस अपराध बोध से बाहर आती है। वह सत्य को समझकर प्रतिशोध को भूलकर सबके साथ सामान्य व्यवहार करती है। जब सूरज को पता चलता है कि वह अवैद्य संतान है तो रूपाबहू उसे सारा सत्य बताकर उसके सामने अपनी गलती स्वीकार कर लेती है।

रूपाबहू के साथ अवैद्य संबंध के विच्छेद के बाद राजू पण्डित एक और औरत को साथ रखने लगता है जिसे वह शारदा की मौत के बाद घर लाता है। लोग उन दोनों के संबंध में अनेक बातें बनाते हैं। कोई कहता है किसी की विधवा को भगा लाया, कोई कहता है रखैल है।

प्रेम के वशीभूत होकर सूरज ने संतोष को अनेक उपहार पत्र दिये थे जिनका अब कोई महत्व नहीं था क्योंकि संतोष व सूरज दोनों ही वास्तविकता को जान गए थे। सूरज को इस सच का गहरा धक्का लगा। प्रेम में भावात्तिरेक की स्थिति में सूरज संतोष के पास जाकर बिना किसी भूमिका के कहता है **''मेरा सब लोटा दो।''**[25]

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि 'रूपाजीवा' उपन्यास में लक्ष्मीनारायण लाल ने विवाहेत्तर संबंध व प्रेम संबंध दोनों का वर्णन एक मर्यादा में रहकर किया है। स्वयं पात्रों के द्वारा ही उनका अपराध स्वीकार करवाकर उन्हें उच्च स्तर पर बिठा दिया है। यद्यपि नाटक का अन्त दुखांत प्रतीत होता है फिर भी ऐसा लग रहा है जैसे अब कोई भी समस्या नहीं बची है। सभी प्रकार के प्रतिशोध, घमण्ड, अपराध बोध समाप्त हो गये हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. ज्ञानवती अरोड़ा, समसामयिक कहानियों में बदलता पारिवारिक परिवेश, पृ. 32
2. रूपाजीवा, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 13
3. वही, पृ. 320
4. वही, पृ. 14
5. वही, पृ. 358

RRIJM 2015, All Rights Reserved

6. वही, पृ. 145
7. वही, पृ. 72
8. वही, पृ. 344
9. वही, 44
10. वही, पृ. 265
11. डॉ. सुदर्शन राठी, लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 96
12. रूपाजीवा, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 42
13. वही, पृ. 134
14. वही, पृ. 298
15. डॉ. सुदर्शन राठी, लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 28
16. रूपाजीवा, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 8
17. वही, पृ. 13
18. वही, पृ. 42
19. वही, पृ. 43
20. वही, पृ. 67
21. वही, पृ. 330
22. डॉ. ज्ञानवती अरोड़ा, समसामयिक कहानियों में बदलते पारिवारिक परिवेश, पृ. 311
23. डॉ. सुदर्शन राठी, लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 78
24. किरण जोशी, दैनिक जनसता, पृ. 5
25. रूपाजीवा, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 339

RRIJM 2015, All Rights Reserved